International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-8, Issue-3 May-June- 2021
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org
Email- editor@ijesrr.org

उत्तर प्रदेश में नगरीय शासन की भूमिका का विश्लेषण

डा0 कमल जोशी
(भारतीय वायु सेना)
कार्यरत-पुणे (महाराष्ट्र)
निवासी-पिथौरागढ़ (उत्तराखंड)

सार–

प्रस्तुत शोध पत्र में नगरीय शासन के ऐतिहासिक विकास का अध्ययन किया गया है। इसमें प्राचीन भारत के सिन्धु सभ्यता की नगरीय व्यवस्था से लेकर मौर्य, गुप्त, मुगलकाल व ब्रिटिश इण्डिया तक के शासन में नगरीय शासन का विकास हुआ है। ब्रिटिश शासन के दौरान विभिन्न अधिनियम पारित किये गये, जिसके माध्यम से विकास होता रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी इस दिशा में प्रयास जारी रहे व समय–समय पर विभिन्न समितियाँ बनती रहीं। जवाहरलाल नेहरू ने नगरीय शासन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी नगरीय शासन को मजबूत बनाने पर बल दिया गया। उत्तर प्रदेश में मई 1994 में 74वाँ संवैधानिक संशोधन लागू तो हो गया परन्तु 74वें संवैधानिक संशोधन के तहत 12वीं अनुसूची के 18 विषय, जो नगर निगम को हस्तान्तरित किये जाने थे, अभी तक हस्तान्तरित नहीं किये गए हैं जिस कारण आज भी नगर निगम कमजोर हैं।

प्रस्तावना–

सामान्यतः किसी देश में शासन के तीन स्तर होते हैं–प्रथम–केन्द्रीय, द्वितीय–प्रान्तीय, तृतीय–स्थानीय। स्थानीय शासन में दो पक्ष होते हैं–एक ग्रामीण, दूसरा नगरीय। बढ़ते नगरीकरण के कारण एक सुदृढ़ और सक्षम शासन की आवश्यकता निर्विवाद है, जो नगर निवासियों को अपेक्षित सुविधायें प्रदान करने की दृष्टि से प्रभावी हो। नगरीय शासन का क्षेत्राधिकार एक विशिष्ट क्षेत्र तक ही सीमित होता है और उसके कार्यों का सम्बन्ध उस क्षेत्र के अन्तर्गत बसने वाली जनता को नागरिक सुविधायें प्रदान करने से होता है; उसके हाथ में कतिपय नियामक शक्तियाँ होती हैं। नगरीय शासन अधिनियम की उन धाराओं के अनुसार कार्य करता है, जिसके द्वारा उसकी रचना की जाती है। वह राज्यीय अथवा प्रान्तीय शासन के अधीन होता है, जो उसके कार्यों का नियंत्रण और निर्देशन करता है। कुछ परिस्थितियों में राज्य सरकार नगरीय शासन को निलम्बित अथवा भंग भी कर सकती है।[1]

जब लोग किसी स्थान पर मिलकर रहने लगते हैं तो उस सामुदायिक जीवन के फलस्वरूप कुछ समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इन समस्याओं का सम्बन्ध नागरिक जीवन की सुविधाओं से होता है। जैसे–पेयजल व्यवस्था, कूड़ा–करकट हटाना, गन्दे पानी के निष्कासन के लिए नालियों का प्रबन्ध, प्रकाश की व्यवस्था, महामारियों की रोकथाम, स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधायें, सड़कें आदि। जनसंख्या वृद्धि के साथ ही

[1] माहेश्वरी श्रीराम, लोकल गवर्नमेन्ट इन इण्डिया, लखनऊ, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल पब्लिशर्स, 1971, पृ.221।

आवासीय क्षेत्र का विस्तार होता है परिणामतः अन्य समस्यायें उठ खड़ी होती हैं और वे अधिक उग्र रूप धारण कर लेती हैं। उदाहरण के लिए व्यापार एवं वाणिज्य का नियमन, खतरनाक व अस्वास्थ्य उद्यमों का नियंत्रण, शिक्षा की सुविधायें, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ ही जीवनयापन के लिए आवश्यक न्यूनतम सुविधाओं के सम्बन्ध में धारणा भी बदलने लगती हैं। अतः नगरीय शासन के कार्यों में निरन्तर वृद्वि हो रही है। विद्यमान सुविधाओं का परिवर्द्धन करना पड़ता है। नई सुविधायें जुटानी पड़ती हैं व विभिन्न कार्यों की सम्पादन प्रक्रिया में निरन्तर सुधार करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि नगरीय शासन का उत्तरदायित्व उन सब सुविधाओं को जुटाना है जो क्षेत्र विशेष के लोगों की शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन को अधिकाधिक अच्छा बनाने के लिए आवश्यक होती है।[2] इनमें कुछ कार्य तो सामान्य प्रकृति के होते हैं, उनका सम्बन्ध व्यापकता तथा तीव्रता दोनों की दृष्टि से अन्य स्थानों में बसने वाले समुदायों के साथ भी होता है। इसलिए उनसे होने वाले लाभ अनन्य रूप से किसी एक समुदाय को प्रदान नहीं किये जा सकते। अतः इन कार्यों को प्रादेशिक अथवा राष्ट्रीय स्तर पर कार्यक्रमबद्ध रूप में आयोजित और सम्पादित करना पड़ता है और उसका सीधा सम्बन्ध प्रांतीय अथवा राष्ट्रीय सरकार से होता है। नगरीय शासन के कार्यों की संख्या कम नहीं है, वस्तुतः नगरीय शासन के कार्यों में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। नगरीय शासन ने अनेक ऐसे कार्यों का दायित्व अपने ऊपर ले लिया है, जिसके द्वारा या तो नागरिकों के आचरण का नियमन होता है अथवा जिनसे नागरिकों की सेवा होती है। जैसे सामूहिक परिवहन की व्यवस्था, दरिद्र लोगों के लिए भवनों का निर्माण, बिजली, स्वास्थ्य केन्द्रों, पार्कों और क्रीड़ा क्षेत्रों की व्यवस्था आदि। वस्तुतः वर्तमान में जनसमुदाय के दैनिक जीवन में नगरीय शासन का प्रांतीय अथवा केन्द्रीय शासन से भी अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। उल्लेखनीय यह है कि भविष्य में नगरीय शासन के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होते रहने की सम्भावना लगातार बढ़ रही है।[3]

प्रत्येक देश में रेल, प्रतिरक्षा विभाग आदि अनेक संस्थान होते हैं जो सड़कों, परिवहन, बिजली, शिक्षा, मनोरंजन के साधनों आदि का पृथक प्रबन्ध करते हैं। वस्तुतः वे उन सब कार्यों की व्यवस्था करते हैं जो सामान्यतः स्थानीय शासन के अन्तर्गत आते हैं। फिर भी उन्हें नगरीय शासन का नाम नहीं दिया जा सकता। नगरीय शासन की निम्नलिखित विशेषतायें हैं–प्रथमतः उसका स्वरूप सांविधिक होता है अर्थात् सांविधि (अधिनियम) द्वारा उसकी रचना की जाती है। द्वितीय उसे अपने क्षेत्राधिकार के अंर्तगत बसने वाले निवासियों पर कर लगाकर वित्त एकत्र करने का अधिकार होता है। तीसरे, स्थानीय समुदायों की कुछ विशिष्ट विषयों के सम्बन्ध में निर्णय करने में तथा उसके प्रशासन में साझेदारी होती है। चौथे, स्थानीय शासन को केन्द्रीय नियंत्रण से मुक्त रहकर काम करने का अधिकार होता है और अन्त में उनका स्वरूप एक उद्देशीय न होकर सामान्य उद्देशीय हुआ करता है। विलियम ए रॉब्सन लिखता है : ''सामान्यतः स्थानीय शासन में एक ऐसे प्रादेशिक, प्रभुत्वहीन समुदाय की धारणा निहित होती है, जिनके पास अपने मामलों का नियमन करने का विधिक अधिकार तथा आवश्यक संगठन हुआ करता है। इसके लिए एक सत्ता का होना आवश्यक है जो बाह्य

[2] सिंह वामेश्वर, भारत में स्थानीय स्वशासन, नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन्स, पृ.3

[3] पाण्डेय अवध बिहारी, भारत वर्ष का इतिहास, वाराणसी नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, पृ. 331

नियंत्रण से मुक्त रहकर काम कर सके और यह भी आवश्यक है कि स्थानीय समुदाय का अपने मामलों के प्रशासन में साझा हो। स्थानीय शासन में ये तत्व किस सीमा तक विद्यमान होते हैं, इस सम्बन्ध में न्यूनाधिक अन्तर हो सकता है।''[4]

नगरीय शासन की आवश्यकता –

शासन के एक विशिष्ट घटक (इकाई) के रूप में नगरीय प्रशासन का उदय अनेक तत्वों की पारस्परिक क्रिया और प्रतिक्रिया का फल है। उदाहरण के लिए इसके विकास में ऐतिहासिक, विचारात्मक और प्रशासनिक तत्वों ने योगदान दिया है। ऐतिहासिक दृष्टि से स्थानीय शासन, राष्ट्रीय शासन से पूर्व अस्तित्व में रहा है। मनुष्य ने पहले अपने पड़ोस के शासन का विकास किया, जैसे ग्राम शासन, नगर शासन इत्यादि। राष्ट्रीय शासन के उदय और विकास के बाद भी स्थानीय शासन राष्ट्रीय शासन की इकाइयों के रूप में विद्यमान रहा। कारण यह था कि राष्ट्रीय शासन ने वे ही काम अपने हाथ में लिये जो सामान्य प्रकृति के प्रतीत हुए और जिनका सम्बन्ध सम्पूर्ण राज्य की जनता के हितों से था। स्थानीय महत्व के काम उसने नगरीय शासन द्वारा सम्पादित किये जाने के लिए छोड़ दिये, जैसा कि पहले से होता आया था। नगरीय शासन के कार्यों का आधार प्रादेशिक होता है। प्रशासन की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है कि जिन नागरिक सेवाओं की किसी जनसमुदाय को आवश्यकता होती है, उनको उस समुदाय के आवास क्षेत्र अथवा प्रदेश की दृष्टि से आयोजित, कार्यक्रमबद्ध और संगठित किया जाये।[5]

नगरीय शासन इसलिए भी आवश्यक होता है कि कुछ सार्वजनिक आवश्यकतायें सघनता, स्वरूप तथा विस्तार की दृष्टि से स्थानीय हुआ करती हैं। दूसरे शब्दों में उनका सम्बन्ध सभी क्षेत्रों से नहीं होता अथवा सघनता की दृष्टि से उनके बीच महत्वपूर्ण प्रादेशिक अन्तर देखने को मिलते हैं। ऐसी समस्याओं को स्थानीय ढंग से समाधानों को विकसित करके ही सुलझाया जा सकता है। नगरीय शासन उस प्रशासनिक एकरूपता की स्थापना को रोकता है जो राज्य की नौकरशाही का उद्देश्य हुआ करती है। नगरीय शासन निर्धारित क्षेत्र में जनता की सेवा करता है तथा विविध प्रकार के कार्य सम्पादित करता है। केवल व्यावहारिक बुद्धि से विचार करने पर ही हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि नगरीय शासन को कायम रखना ही नहीं अपितु उसे सुदृढ़ बनाना भी अत्यन्त आवश्यक है। राज्य द्वारा इन सब कार्यों का सम्पादन करना असम्भव है। सामुदायिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले अनेक ऐसे विषय हैं जिन्हें केवल नगरीय शासन ही सम्पादित कर सकता है। ऐसा न होने पर भी राज्य शासन को ऐसे दैनिक कार्यों में उलझ कर अपनी शक्ति तथा क्षमता नष्ट नहीं करनी चाहिए बल्कि उसे अधिक व्यापक महत्व के कार्यों में ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति जुटानी चाहिए। अतः नगरीय शासन राज्य शासन को ऐसे बहुत से कार्यों से मुक्त कर देता है, जिनको करना उसका उत्तरदायित्व है। इसके अतिरिक्त स्थानीय समस्याओं को सुलझाने के लिए स्थानीय परिस्थितियों तथा वातावरण का ज्ञान आवश्यक होता है। कौन से काम हाथ में लिये जाये, उन कामों को कब और किस प्रकार पूरा किया जाये, इन सबके

[4] तिवारी डी.डी., नगरीय निकायों में पार्षदों के अधिकार, कर्तव्य एवं शासन द्वारा प्रत्यायोजित शक्तियां, भोपाल : सुविधा लॉ हाउस प्रा.लि., पृ. 1

[5] माहेश्वरी एस.आर., भारत में स्थानीय प्रशासन, लखनऊ : लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिशर्स, 2004 पृ.196

लिये स्थानीय परिस्थितियों की गहरी और निकटस्थ जानकारी आवश्यक होती है। वस्तुतः इन्हीं आवश्यकताओं ने नगरीय शासन के विचार को जन्म दिया है।

"आधुनिक भारत में शहरी निकायों की शुरुआत सन् 1687 में मद्रास नगर निगम की ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्थापना के साथ हुई, जिसे विभिन्न नागरिक सुविधाओं जैसे विद्यालयों, टाउन हाल इत्यादि देने से सम्बद्ध किया गया है। नगर निगम में एक निगमाध्यक्ष (महापौर, निगमपति), एक नगर एल्डरमैन तथा एक नगर प्रतिनिधि सम्मिलित होते थे। 1726 में नगर निगम के स्थान पर एक नगराध्यक्ष के न्यायालय की स्थापना की गई, उसका स्वरूप प्रशासनिक न होकर न्यायिक अधिक था। भारत में नगरीय शासन की प्रगति के लिए 1793 तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। उस वर्ष उसको सांविधानिक अधिकार प्राप्त हुआ। 1793 के चार्टर एक्ट के द्वारा मद्रास, बम्बई तथा कलकत्ता में तीन महाप्रान्तीय नगरों में नगर प्रशासन की स्थापना की गयी। उस अधिनियम के अनुसार भारत के महाराज्यपाल (गवर्नर जनरल) को उक्त तीन नगरों में शांति दण्डाधिकारी को नियुक्त करने का अधिकार दे दिया गया।"[6]

मद्रास, बम्बई, कलकत्ता नगर महापालिकाओं के बनने के बाद म्युनिसिपल प्रशासन का विस्तार बंगाल के अन्य जिलों में 1842 में बंगाल एक्ट' के तहत किया गया। यह मुख्यतः शौचालय व्यवस्था की देख–रेख के लिए था, किन्तु इस अधिनियम का लोगों ने कड़ा विरोध किया। इसका मुख्य कारण लोगों पर प्रत्यक्ष कर का आरोपण होना था। पुनः दूसरा अधिनियम 1850 में लाया गया, जिसके अन्तर्गत प्रत्यक्ष कर को परिवर्तित कर अप्रत्यक्ष किया गया तथा नगरपालिकाओं की अनिवार्यता को स्वैच्छिक रूप से परिवर्तित किया गया। इस समय तक भारत में जो नगरीय स्वशासन का परिदृश्य था। उसकी संरचना मुख्यतः केन्द्रीकृत थी, किन्तु ऊपरी तौर पर यह व्यवस्था लोकतांत्रिक रखी गयी थी। 1863 के पश्चात् कई कानून पास किये गये, जिनके द्वारा प्रान्तीय सरकारों को नगरपालिकाओं की स्थापना करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया।

नगरीय शासन को शक्तिशाली बनाने के लिए समय–समय पर विभिन्न प्रयास सरकार द्वारा किये जाते रहे हैं, जिसमें 74वाँ संवैधानिक संशोधन अधिनियम प्रमुख है। केन्द्र सरकार ने 1989 के पश्चात् नगरी शासन सुधार में रुचि ली, जिसमें राजीव गाँधी का महत्वपूर्ण योगदान है। नगरपालिकाओं के निर्वाचित सदस्यों से परामर्श लिया गया। तीन क्षेत्रीय सम्मेलन जून 1989 में बंगलौर, कटक और दिल्ली में आयोजित किये गये एवं इससे पहले भी नगरपालिका अधिकारियों की एक गोष्ठी बुलाई गई थी। मुख्य सचिवों, स्थानीय स्वशासन मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों से पृथक्–पृथक् व्यापक विचार–विमर्श किया गया। इसके पश्चात् राजीव गाँधी सरकार ने अगस्त 1989 में संविधान (65वाँ संशोधन) विधेयक संसद में प्रस्तुत किया। यह विधेयक लोकसभा में पारित कर दिया गया, लेकिन राज्य सभा में पास न होने के कारण समाप्त हो गया। वी0 पी0 सिंह के नेतृत्व में बनी राष्ट्रीय मोर्चा सरकार ने पुनः यह विधेयक (74 वॉ संशोधन) विधेयक 1990 में प्रस्तुत किया। यह सितम्बर 1990 में संसद में पेश किया गया, लेकिन संसद में विघटन के कारण समाप्त हो गया। 1991 में पी0

[6] चौबे एवं कश्यप, आदि भारत, बनारस, वाणी बिहार, पृ. 231

वी0 नरसिम्हा राव की सरकार बनी।[7] सितम्बर 1991 को इस सरकार द्वारा नगरपालिका स्थानीय शासन से सम्बन्धित पुनः संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तावित किया गया। दिसम्बर 1992 में इसे दोनों सदनों में स्वीकृति मिली।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि 74वाँ संशोधन जल्दबाजी में पारित हुआ। इसमें प्रादेशिक सरकारों को कानून बनाकर अधिकार सौंपने के लिए न तो कोई समय सीमा रखी गई और न ही बाध्यता। इसका परिणाम यह हुआ कि 1993 में पारित होने के बाद भी कुछ राज्यों में तो नियम बनाये, कुछ ने आधे अधूरे बनाये, कुछ ने बनाये ही नहीं। उत्तर प्रदेश में इसके अन्तर्गत पहली बार नवम्बर 1995 में चुनाव हुए। बंगाल, केरल, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात आदि में किसी न किसी रूप में इसे लागू किया गया। बिहार में तो 7–8 वर्षों तक चुनाव करवाये ही नहीं गये। इसके अतिरिक्त प्रत्येक प्रदेश ने अपने–अपने ढंग से नियम बनाये। कहीं महापौर जनता द्वारा सीधे चुने जाने की व्यवस्था की गई तो कहीं पार्षदों द्वारा। कहीं महापौर का कार्यकाल पाँच वर्ष, कहीं ढाई, कहीं एक वर्ष का निर्धारित किया गया। नगर निगमों को अधिकर भी राज्य सरकार ने जितना सुविधाजनक समझा, सौंपे गए। 12वीं सूची में उल्लिखित अधिकतर अधिकार, शक्तियाँ कागज तक सीमित रह गयीं। एकरूपता न होने से नगर निगमों के संचालन एवं स्वशासन में अनेक कठिनाइयाँ आने लगीं। प्रदेशों में महापौर एवं नगर पालिका अध्यक्ष अपने–अपने प्रदेशों में इस दिशा में प्रयासरत हैं।

उत्तर प्रदेश नगरीय शासन–74वें संवैधानिक संशोधन से पूर्व–

उत्तर प्रदेश के नगरीय स्थानीय सरकार का इतिहास काफी उथल–पुथल का रहा है। संयुक्त प्रान्त नगरपालिका अधिनियम 1916 जो पूर्व ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न प्रकार के नियम व कानून विभिन्न शहरी निकायों के लिए विकसित किये थे। संयुक्त प्रान्त अधिनियम में मध्यम एवं बड़े नगरों के लिए विशेष व्यवस्थाएँ की गईं लेकिन जनसंख्या की वृद्धि से कुछ शहरों जैसे–कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, आगरा, लखनऊ नगरपालिकाओं का कार्य प्रबंध संयुक्त प्रान्त नगरपालिका अधिनियम 1916 के तहत करना काफी कठिन हो गया। इन समस्याओं को देखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार ने उ0 प्र0 नगरपालिका अधिनियम 1959 पारित किया, जिसके अन्तर्गत पाँच कबाल नगरों (कानपुर, आगरा, वाराणसी, इलाहाबाद, लखनऊ) को नगर निगम घोषित किया।

"74वें संवैधानिक संशोधन से पूर्व उत्तर प्रदेश के नगरीय क्षेत्रों में जो स्थानीय निकाय थे, उनमें टाउन एरिया संयुक्त प्रान्त टाउन एरिया अधिनियम 1914, नगरपालिकाएँ संयुक्त प्रान्त म्युनिसिपैलिटी अधिनियम 1916 तथा नगर महापालिकायें उत्तर प्रदेश नगरपालिका अधिनियम 1959 से शासित हो रहे थे।"[8] 1994 के पूर्व उत्तर प्रदेश में अग्रलिखित नगर स्थानीय क्षेत्र थे–नगर महापालिका क्षेत्र, नगरपालिका क्षेत्र, नगर क्षेत्र तथा अधिसूचित क्षेत्र।

---

[7] पाण्डेय आर.एन. प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृति इतिहास, इलाहाबाद, प्रयाग पुस्तक भवन संस्करण 2003, पृ. 196

[8] चोपड़ा डॉ. सरोज, स्थानीय प्रशासन, जयपुरः राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी पृ. 27

1. नगर महापालिकायें : नगर महापालिका में महापौर की अध्यक्षता में एक परिषद् इसकी स्थायी समिति तथा एक महापालिका आयुक्त होता था। परिषद् के सदस्यों को सभासद कहते थे, जो कि महापालिका क्षेत्र में रहने वाली जनता के द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होते थे तथा इसके लिए शहरों को वार्डों में विभाजित किया जाता था। परिषद् में लोकसभा एवं राज्य विधानसभा के ऐसे सदस्य जिसके निर्वाचन क्षेत्र में शहर अथवा उसका कोई भाग आता हो तथा राज्य सभा और राज्य विधान परिषद् के ऐसे सदस्य जो कि शहर की सीमा में निवास करते हों, परिषद् के पदेन सदस्य होते थे। विभिन्न राज्यों में परिषद् का कार्यकाल भिन्न–भिन्न होता था। महापालिका आयुक्त निगम का मुख्य अधिकारी था।''[9]

2. नगरपालिका : ''सामान्यतः क्षेत्र की जनसंख्या, आकार, आय के स्रोत, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक भविष्य तथा सम्भावनाओं पर इसकी स्थापना का आकार निर्भर करता था। नगरपालिका में एक परिषद्, एक अध्यक्ष अथवा सभापति तथा एक कार्यकारी अधिकारी होते थे। नगर पालिका परिषद् के सदस्य पालिका क्षेत्र की जनता द्वारा वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित होते थे। सभापति अथवा अध्यक्ष या तो पालिका परिषद् के सदस्यों अथवा सीधे जनता द्वारा निर्वाचित होता था तथा उसका कार्यकाल पालिका परिषद् के समान होता था।''[10]

3. अधिसूचित क्षेत्र समिति : ये समितियाँ ऐसे क्षेत्रों में स्थापित की जाती थीं, जो महत्वपूर्ण तो था, परन्तु नगरपालिका की स्थापना हेतु जो आवश्यक परिस्थितियॉ थीं उन्हें अभी पूरा न कर पा रहा हो। सामान्यतः इनकी स्थापना ऐसे क्षेत्रों में की जाती थी, जो कि तेजी से विकसित हो रहे हों तथा जहाँ नये उद्योगों की स्थापना की जा रही हो। इनकी स्थापना विधि द्वारा नहीं वरन् राज्य गजट में सरकारी अधिसूचना के द्वारा की जाती थी। इसके लिए इसको अधिसूचित क्षेत्र कहते थे। इस समिति के सभी सदस्य राज्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इसका सभापति भी राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता था।''[11]

4. नगर क्षेत्र समिति : ये समितियाँ सम्बन्धित राज्य निकाय–मण्डलों द्वारा पारित कानूनों पर आधारित थीं। इनके कार्य बहुत सीमित थे–जैसे प्रकाश व्यवस्था, नालियाँ, मार्ग सफाई आदि।''[12]

उत्तर प्रदेश नगरीय शासन–74वें संवैधानिक संशोधन लागू होने के पश्चात

74वें संशोधन के अनुपालन में उत्तर प्रदेश विधान मण्डल ने उत्तर प्रदेश नागर स्वायत्त शासन विधि (संशोधन) अधिनियम, 1994 पारित किया। नया अधिनियम 1959 के नगर महापालिका तथा 1916 के नगर पालिका अधिनियमों में 74वें संशोधन की आवश्यकता के अनुसार संशोधन करता है। परन्तु यह 1914 के नगर क्षेत्र के अधिनियम को समाप्त कर देता है, क्योंकि 74वें संशोधन में इस प्रकार के निकाय की व्यवस्था नहीं है। 74वें संशोधन के पश्चात् उ0 प्र0 में अब अग्रलिखित 4 क्षेत्र हैं, महानगर क्षेत्र, वृहत्तर नगरीय क्षेत्र, लघुत्तर नगरीय क्षेत्र तथा संक्रमणशील क्षेत्र। कोई भी क्षेत्र, जिनकी जनसंख्या 10 लाख अथवा उससे अधिक हो तथा

---

9 माहेश्वरी, एस.आर., भारत में स्थानीय शासन, लखनऊ : लक्ष्मीनारायण अर्गवाल, पृ. 197

10 ग्रोवर वी.एल. मेहता एवं अलका यशपाल, आधुनिक भारत का इतिहास, नई दिल्ली, एस.एण्ड कम्पनी 2011 पृ. 36

11 सिंह वामेश्वर, भारत में स्थानीय स्वशासन, नई दिल्ली, राधा पब्लिकेशन्स पृ. 11

12 बर्थवाल चन्द्रप्रकाश, स्थानीय स्वशासन, शोध प्रकाशन, लखनऊ संस्करण 2007, पृ. 59

जिनके अन्तर्गत एक अथवा अधिक जनपद तथा दो अथवा अधिक नगर स्थानीय निकाय अथवा पंचायतें अथवा अन्य जुड़े हुए क्षेत्र को मिलाकर बना हो, को राज्यपाल सार्वजनिक अधिसूचना के द्वारा महानगर क्षेत्र घोषित कर सकता है। वृहत्तर नगरीय क्षेत्रों, लघुत्तर नगरीय क्षेत्रों तथा संक्रमणशील क्षेत्रों की अधिसूचना भी राज्यपाल ही जारी करता है।

1994 के नगर अधिनियम के अनुसार नगर निगम में तीन प्रकार के सदस्य होंगे– निर्वाचित, मनोनीत व पदेन। नगर निगम में पीठासीन अधिकारी महापौर होता है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों व अन्य पिछड़ा वर्गों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई। 74वें संशोधन का अनुसरण करते हुए आरक्षण में स्थानों को चक्रानुक्रम का सिद्वांत 1994 के उत्तर प्रदेश नगरीय अधिनियम में अपनाया गया। उत्तर प्रदेश नगरीय अधिनियम महानगर क्षेत्रों, वृहत्तर नगर क्षेत्रों तथा ऐसे लघुत्तर नगरीय क्षेत्रों में जिनकी जनसंख्या 3 लाख अथवा उससे अधिक है, के वार्डों की समितियों की स्थापना का प्रावधान करता है।

नगर निगम का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित कर दिया गया है। पाँच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व ही नये निर्वाचन सम्पन्न हो जायेंगे। किसी भी निकाय को राज्य सरकार द्वारा विघटित किया जा सकता है। 74वें संशोधन का अनुपालन करते हुए उत्तर प्रदेश में यह प्रावधान कर दिया गया है कि भंग करने से पूर्व स्थानीय निकाय को राज्य सरकार के सम्मुख अपनी बात कहने का अधिकार है। विघटन की दशा में विघटन की तिथि से 6 माह के अन्दर निर्वाचन सम्पन्न होने आवश्यक हैं तथा नवनिर्मित निकाय पूर्ववर्ती निकाय के अवशेष कार्यकाल का ही उपभोग करेगा। परन्तु यदि पूर्ववर्ती निकाय का कार्यकाल 6 माह से कम रहा, तो नवनिर्वाचित निकाय सम्पूर्ण 5 वर्ष के कार्यकाल के लिए गठित होगा। निर्वाचन राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा कराये जायेंगे।

निष्कर्ष–

स्थानीय स्वाशासन संस्थाओं में नगर पालिका निगमों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नगर पालिक निगम की स्थापना नगर के विकास एवं नागरिकों के जीवन स्तर को ऊॅचा करने के लिए की जाती है। नगर पालिक निगमें नगरो की व्यवस्था करती हैं और इनके कार्य प्रत्येक स्थान पर लगभग एक जैसे होते हैं। नगर पालिक निगम के कार्यो का अध्ययन हम दो सिद्धान्तों के आधार पर कर सकते है। प्रथम सिद्धांत यह है कि परिषद कोई भी ऐसा कार्य करती है, जो नगर एवं देश हित मे हो और दूसरा सिद्धांत यह है कि परिषद कोई भी ऐसा कार्य बिना राज्यपाल की अनुपति के नहीं कर सकती है। विभिन्न देशों मे स्थानीय संस्थाओं के कार्यो का निर्धारण करने के लिये भिन्न–भिन्न सिद्धांत अपनाये गए हैं। शासन के कार्यो को मुख्य रूप से 3 वर्गो में रखा जा सकता है– पहले भाग में वे सभी कार्य शामिल हैं, जो पूरे देश से संबंधित हैं। जैसे–रक्षा, विदेशी संबंध, रेल, डाकतार, विदेशी व्यापार आदि। हमारे संविधान द्वारा इन कार्यो को केन्द्रीय सरकार को सौंपा गया है।

दूसरे भाग में वे कार्य आते हैं, जो पूरे देश के लिए तो महत्वपूर्ण नहीं हैं। लेकिन जिनका क्षेत्रीय महत्व होता है। जैसे–पुलिस, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि। संविधान द्वारा इन कार्यो का दायित्व राज्य सरकारों को सौंपा गया है।

तीसरे भाग में वे कार्य आते हैं, जिनका न तो राष्ट्रीय महत्व है और न ही क्षेत्रीय बल्कि इनका स्थानीय महत्व है–उदाहरण के लिए हमें पीने के लिए साफ पानी चाहिए। इन कार्यो को स्थानीय संस्थायें करती है। यह उल्लेखनीय है कि लखनऊ नगर निगम के महापौर पद के विषय में अब तक कोई क्रमबद्ध कार्य नहीं किया गया है। यदाकदा कुछ शोध पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में समय–समय पर कुछ लेख अवश्य प्रकाशित हुए हैं। सम्भवतः इसलिए महापौर का पद अपनी सीमित शक्तियों और सीमित कार्यक्षेत्र के कारण अकादमिक समुदाय के लिए आकर्षण न बन सका। लखनऊ नगर निगम के महापौर के सम्बन्ध में जो भी सामग्री मिलती है, वह उसकी शक्तियों व अधिकारों तक ही सीमित रही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

- अग्रवाल, आर0 सी0, भारतीय संविधान का विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 1994.
- अरोड़ा, रमेश, एवं चतुर्वेदी, गीता, भारत में राज्य प्रशासन, अर0वी0एस0ए0 पब्लिशर्स, जयपुर, 2009.
- एल्डलफर, एच0 एफ0 , लोकल गवर्नमेंट इन डेवलेपिंग कन्ट्री, मैग्रा हिल्स बुक, न्यूयार्क, 1964.
- कौटिल्य द कॉ, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, सी0 जमनादास एण्ड को0 एजुकेशनल एण्ड लॉ पब्लिशर्स, बाम्बे, 2002.
- कुरैशी, एम0 ए0, इण्डियन एडमिनिस्ट्रेशन प्री एज पोस्ट, इंडिपेन्डेन्स, वी0 आर0 पब्लिशिंग, कॉरपोरेशन, दिल्ली, 1985.
- कश्यप, सुभाष सी0, का0 रिफार्म, प्राबल्म, प्रास्पेक्टस एण्ड पर्सपेक्टिव, राधा पब्लिशिंग, न्यू दिल्ली, 2004.
- खीचड़, नरेन्द्र एवं कटियार सुरेन्द्र, नगरीय प्रशासन, मलिक एण्ड कम्पनी, जयपुर, 2011.
- खन्ना, रतन लाल, म्युनिसिपल गवर्नमेण्ट एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया, मोहिन्द्रा कैपिटल पब्लिशर्स, दिल्ली, 1967.
- गुप्ता, वी0 वी0, लोकल गवर्नमेण्ट इन इण्डिया, सेण्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1968.
- गोयल, एस0 एल0 एण्ड दालिवाल, एस0 एस0, अरबन डेवलपमेण्ट एण्ड मैंनेजमेण्ट, दीप एण्ड दीप, न्यू दिल्ली, 2001.
- चन्द्र, सतीश, मध्यकालीन भारत सल्तनत में मुगलकाल तक, भाग दो 1526–1761), जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2001.
- यादव कुसुम, द्विवेदी एस0के0, उत्तर प्रदेश के नगरीय शासन में महापौर की भूमिका : लखनऊ नगर निगम के विशेष संदर्भ में, 2007.